International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(1): 167-169

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(1): 167-169
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 25-11-2016
Accepted: 27-12-2016

डॉ. अशोक कुमार दुबे
एसोशिएट प्रोफेसर–संस्कृत
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश, भारत

डॉ. सान्त्वना द्विवेदी
सहायक आचार्य, संस्कृत
डीएवी पीजी कॉलेज, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अशोक कुमार दुबे
एसोशिएट प्रोफेसर–संस्कृत
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश, भारत

राष्ट्रगौरवम् में संक्रान्ति–काल–संभावना

डॉ. अशोक कुमार दुबे एवं डॉ. सान्त्वना द्विवेदी

सारांश
परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। जिसके अनेक प्रकार के जइ–चेतनात्मक परिवर्तन सम्भावित होते रहते हैं। वस्तुतः ''संक्रान्ति'' का सम्यक् अर्थ है–''सम्यक् क्रान्ति''। सम्यक् क्रान्ति में लाभ–हानि, उत्कर्ष–अपकर्ष, अभीष्ट–अनभीष्ट, अपेक्षित–अनपेक्षित आदि भाव समाविष्ट होते हैं। प्रकृति प्रदत्त प्राणिमात्र के जीवन के साथ–साथ जीवनोपयोगी भौतिक संसाधनों का उपहार है, उसका संरक्षण करना हमारा आत्मधर्म है, जो युगधर्म में समाहित हो गया है। जबकि वेद, उपनिषद, पुराण, साहित्य सबके अनुसार स्वधर्म पालन करने का निर्देश समाहित है। सभी प्राकृतिक घटक देवभाव से मण्डित है, क्योंकि चराचरात्मक जगत् भी उसी परमात्मा की सर्जना है, जिसने मानव की सृष्टि की। किन्तु आज का मानव स्वयं को सुखी एवं सुरक्षित रखने के लिए प्रकृति का संरक्षण न कर उसका विनाश कर रहा है। जिसके कारण आज संक्रानित की स्थिति बनी हुई है।
आज के भौतिकवादी युग में उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही जनसंख्या की उदरपूर्ति एवं सुख–साधन की पूर्ति के मानव, प्रकृति का निर्दयतापूर्वक दोहन व शोषण कर रहा है। जिसके कारण अनेक प्रकार के प्राकृतिक परिवर्तन हो रहे हैं। प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण सम्पूर्ण चराचर के लिए यज्ञ स्वरूप है। सम्प्रति भौतिकवादी मानव के कारण ही प्रकृति में संक्रान्ति की स्थिति उत्पन्न हो गयी है।

मुख्य शब्दः राष्ट्रगौरव, वैदिक काल में प्रकृति चित्रण व संरक्षण

प्रस्तावना
परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। जिसके अनेक प्रकार के जइ–चेतनात्मक परिवर्तन सम्भावित होते रहते हैं। वस्तुतः ''संक्रान्ति'' का सम्यक् अर्थ है–''सम्यक् क्रान्ति''। सम्यक् क्रान्ति में लाभ–हानि, उत्कर्ष–अपकर्ष, अभीष्ट–अनभीष्ट, अपेक्षित–अनपेक्षित आदि भाव समाविष्ट होते हैं। प्रकृति प्रदत्त प्राणिमात्र के जीवन के साथ–साथ जीवनोपयोगी भौतिक संसाधनों का उपहार है, उसका संरक्षण करना हमारा आत्मधर्म है, जो युगधर्म में समाहित हो गया है। जबकि वेद, उपनिषद, पुराण, साहित्य सबके अनुसार स्वधर्म पालन करने का निर्देश समाहित है। सभी प्राकृतिक घटक देवभाव से मण्डित है, क्योंकि चराचरात्मक जगत् भी उसी परमात्मा की सर्जना है, जिसने मानव की सृष्टि की। किन्तु आज का मानव स्वयं को सुखी एवं सुरक्षित रखने के लिए प्रकृति का संरक्षण न कर उसका विनाश कर रहा है। जिसके कारण आज संक्रानित की स्थिति बनी हुई है।
आज के भौतिकवादी युग में उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही जनसंख्या की उदरपूर्ति एवं सुख–साधन की पूर्ति के मानव, प्रकृति का निर्दयतापूर्वक दोहन व शोषण कर रहा है। जिसके कारण अनेक प्रकार के प्राकृतिक परिवर्तन हो रहे हैं। प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण सम्पूर्ण चराचर के लिए यज्ञ स्वरूप है। सम्प्रति भौतिकवादी मानव के कारण ही प्रकृति में संक्रान्ति की स्थिति उत्पन्न हो गयी है।
प्राचीन भारत में सम्पूर्ण क्रियाविधि को ईश्वर द्वारा निर्मित धर्म कहकर उनका पालन करने को कहा गयाहै, ताकि पर्यावरण प्राकृतिक रूप से रह सके। खाद्यान्न को परब्रह्म की संज्ञा दी गई है। रस को परमात्मा कहा गया है। विश्व को एक परिवार कहा गया। साथ ही साथ इन सभी पदार्थों का समुचित उपयोग न कर दुरूपयोग करने पर संक्रान्ति काल की संभावना भी व्यक्त की गयी है।
वास्तव में युगानुरूप मानव की परिस्थितियाँ, मान्यताएँ, कथाएँ, समस्याएँ एवं आवश्यकताएँ भी बलवती रहती हैं। युगानुरूप संक्रान्ति की उपस्थिति हो चुक है, जिसकी संभावना आधुनिक कवि ''आचार्य उपेन्द्र पाण्डेय'' ने स्वरचित गीतिकाव्य ''राष्ट्रगौरवम्'' में व्यक्त की है–

आत्मधर्मो जगद्धर्म स्वास्थितो मूलधर्मश्च मूल्यस्थितो मन्यते।
दृश्यतेऽसौ व सङ्क्रान्तिकालो नवः कालकौतूहलं यत्र सम्भाव्यते।।[1]

अर्थात् सम्पूर्ण विश्व के लिए वर्तमान काल बड़ा ही उथल–पुथल मचाने वाला है, अतः सावधान रहते हुए स्वधर्मों में निष्ठावान् और ईमानदार बनें।
निष्ठावान् और ईमानदार से अभिप्राय है–जो दैव निर्मित सम्पूर्ण चराचर है, उनके प्रति ईमानदार बनना। वस्तुतः प्रकृति का प्रत्येक कण में अन्तर्धि (आंतरिक शक्ति) और परिधि (बाह्य शक्ति) होती है। अन्तर्धि इसे गति एवं ऊर्जा प्रदान करती है और परिधि इसकी रक्षा करत है–

''अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणाम्''[2]
''यह परिधि जीवन की रक्षात्मिका है। वन्यजीव वनों को यथावत रखते हैं। औषधियाँ, जल को आकर्षित कर पृथ्वी पर बरसाते हैं एवं वायु को शुद्ध करते हैं।''[3]

इस प्रकार इस परिधि के बने रहने से अर्थात् पर्यावरण की शुद्धता बनी रहती है। किन्तु आज मानव अपने स्वार्थवश पर्यावरण को संक्रमित करता चला आ रहा है, जिसका परिणाम सर्वविदित है। प्रकृति प्रदत्त संसार के सभी जीवन पर्यावरण के लिए आवश्यक है। एक जीव दूसरे जीव द्वारा किये गये प्रदूषण को दूर करते हैं। पशु–पक्षी, जीव–जन्तु, कीड़े इत्यादि मनुष्यों द्वारा किये गये अवशिष्ट पदार्थों को अपना भोजन बनाकर पर्यावरण संरक्षण करते हैं, वे अपने स्वधर्म का निर्वहन करते हैं, लेकिन भौतिकवादी मानव अपने आत्मधर्म अर्थात् स्वधर्म को जगद्धर्म (लोकधर्म) में समाहित करता जा रहा है तथा मूलधर्म को मूल्यधर्म में स्थित कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप ''संक्रान्ति काल'' उत्पन्न हो गया है।
वैदिक काल में सभी लोग इस बात से अवगत थे कि प्रकृति में प्रापत कोढ़ भी जीवधारी अनावश्यक नहीं है। सर्वप्रथम यदि प्रकृतिप्रदत्त वृक्षों के महत्व को देखें तो यह विदित होता है कि ऋषियों ने वेद मन्त्रों द्वारा वृक्षों, वनस्पतियों, औषधियों, वनों तथा वनों के संरक्षकों तक का स्तवन किया है और उन्हें मधुमय, हितकारी व शान्तिदायक होने की मंगल कामनाएँ की है। यथा–

''नमो वृक्षेभ्यः''[4]
''नमो वन्नाय च''[5]
''वनानां पतये नमः।''[6]
''औषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः।''

इन मन्त्रों से ज्ञात होता है कि ऋषियों की इनके प्रति अगाध श्रद्धा थी। लेकिन वर्तमान मानव के मन–मस्तिष्क में स्वार्थ की अधिकता हो गई है तथा श्रद्धा की कमी, जिसके कारण इनका ह्रास होता जा रहा है। वर्तमान् में वृक्षों की कटाई होती जा रही है। जबकि वृक्ष–वनस्पतियों में सभी ईश्वरीय गुण विद्यमान हैं। ईश्वर, जीव का बिना कुछ लिये कल्याण करता है और वृक्ष भी सबका कल्याण करता है। अतः वृक्षों की रक्षा करना हमारा पुनीत कर्तव्य है।
इसी प्रकार जीवन के लिए शुद्ध वायु की महती आवश्यकता होती है। प्राचीन काल में वायु को दूषित होने से बचाने के लिए ऋषियों का विशेष चिन्तन था। जिसके फलस्वरूप वायु शुद्ध होती थी। परन्तु वर्तमान समय में पूरा वायुमण्डल दूषित हो चुका था। हमारे देश में औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के कारण वायुमण्डल में विद्यमान हवा की शुद्धता में गिरावट आयी है। वायु प्रदूषण इतना विकराल रूप ले चुका है कि नंगी आँखों से शहर में घूमना दूभर हो गया है। इन प्रदूषण में कार्बन मोनो–ऑक्साइट गैस, हवा में विद्यमान दूषित कण वाले पदार्थ, हाइड्रोकार्बन और नाइट्रोजन ऑक्साइड शामिल है। ये सभी गैसें जीवन के लिए घातक हैं। इन गैसों का शोधन होना चाहिए। वृक्षों द्वारा ही इन गैसों का शोधन सम्भव है। यजुर्वेद में वायु की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि–

तनूनापादसूरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः।
पथो अनक्तु मध्वा घृतेन।।[8]

अर्थात् उत्तम गुण वाले पदार्थों में उत्तम गुणवाला, प्रकाशरहित तथा सबको प्राप्त होने वाला जो वायु शरीर में विचरण करता है, उसको तुम जानो। वायु को शुद्ध और अशुद्ध इन दो रूपों में विभाजित करते हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि–

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः।।[9]

अर्थात् प्रत्यक्षभूत दोनों प्रकार की हवाएँ सागर पर्यन्त और समुद्र से दूर प्रदेश पर्यन्त बहती रहती है। हे साधकः एक तो मेरे लिए शक्तिदायक है और जो दूष्ज्ञित हैं उसे दूर फेंक देती है। हजारों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वज इस तथ्य से अवगत थे, कि वायु में कई गैसों का मिश्रण होता है, जिनके अलग–अलग गुण एवं अवगुण हैं। वायुमण्डल में अनेक प्रकार की गैस है, जिसमें एक प्राणवायु भी हैं, जो जीवन के लिए अतिआवश्यक है–

यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो ना देहि जीवसे।।[10]

अर्थात् इस वायु के गृह में जो अमरत्व की धरोहर स्थापित है, वह हमारे जीवन के लिए आवश्यक है। वायु से ही वृष्टि होती है। वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है। अगले मन्त्र में इसी भाव को ऋषि द्वारा व्यक्त किया गया है।
आज सम्पूर्ण जनमानस के समक्ष प्रकृति प्रदत्त सम्पूर्ण भोज्य सामग्री संक्रमण काल से प्रभावित हो रहा है। यद्यपि कि यह पंचतत्वों से निर्मित हैं पंचतत्वों के अन्तर्गत भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश आते हैं। भूत तत्व से अन्न अर्थात् भोज्य सामग्री तथा वृक्ष, वनस्पतियाँ प्राप्त होती हैं। जल तत्व से जीवन शक्ति मिलती है। अग्नि तत्व से ताप, उष्मा और गति प्राप्त होती है। वायु तत्व ही प्राणवायु है। आकाश तत्व ध्वनि तरंगों, शब्द शक्तियाँ एवं सम्वेदनाओं का स्त्रोत है। इस प्रकार इस पंच प्राकृतिक तत्वों से सम्पूर्ण जगत् प्रभावित रहता है। यही भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास का मूलाधार है। इनका सन्तुलन जीवन के स्त्रोत को प्रभावित करता है, क्योंकि पर्यावरण भौतिक तत्वों से निर्मित वह आवरण है, जो मानव या जैव समुदाय को चारों तरफ से घेरे हुए है और जिसका प्रभाव मानव के विकास पर पड़ता है। अतः पर्यावरण सन्तुलन से ही हमारा जीवन है, लेकिन वर्तमान में वह सन्तुलन, असन्तुलित हो चुका है। जिसका परिणाम दिन–प्रतिदिन भयावह रूप धारण कर रहा है। इसी भयावह परिणाम की संकेतित करते हुए आचार्य ने राष्ट्रगौरवम् में उल्लेख किया है–

रौद्ररूपों महाकाल एवाऽधुना दुष्टदैत्यान् निहन्तुं क्षमो दृश्यते।
नन्दिसिंहादिघोषात् त्रिशूलाच्च ते भीतिभीता बहिर्यान्तु ह्येतत्–क्षितेः।।[16]

अर्थात् इस समय रौद्ररूप धारण करने वाले महाकाल ही दैत्यों के नाश में समर्थ दिखाई दे रहे हैं। दैत्य से तात्पर्य आसुरी शक्ति (आतंकवाद के विभिन्न रूप) आज भी भूमण्डल पर समय देशों में दैवी शक्ति पर आक्रान्त कर रही हैं। जिसके अपशमन के लिए आज मानव के पास साम्यर्थ्य हो या न हो किन्तु उसकी शान्ति स्वयं ही महाकाल नन्दी के दहाड़ एवं भगवती शक्ति के सवीर सिंह की भीषण गर्जना एवं शिव के गले में भयंकर सर्प की हुंकृति

तथा त्रिशूल के माध्यम से इस पवित्र भारत भूमि से भयभीत होर बाहर भाग जाए अन्यथा सर्वनाश सुनिश्चित है।

निः सन्देह आचार्य का संक्रान्ति काल विषयक् जो विचार हैं, वह आज सम्पूर्ण भौतिकवादी मनुष्य के समक्ष दर्पण के समान स्पष्ट है। आज भौतिक विकास के नाम पर चतुर्दिक सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। अनाचार, भ्रष्टाचार का विकास हो रहा है। यांत्रिक एवं औद्योगिक सुधारों के अत्यधिक विस्तार के कारण समुन्नति से ज्यादा विनाश हो रहा है। जनजागृति समृद्धि के युग में पूर्णतः प्रविष्ट हुई सी प्रतीत हो रही है। यह केवल आभास ही नहीं है, इसमें बहुत कुछ तथ्यगत सत्यता भी है। यान्त्रिक संस्कृति ने जिन शक्तियों को जन्म दिया है वे दोनों तरह की है–उत्कर्ष करने वाली तथा अपकर्ष करने वाली भी। आज की यान्त्रिक संस्कृति जलती हुई मशाल व धधकती हुई अग्नि के समान है। मशाल मार्गदर्शन करती है और घरों में आग लगाती है। सच तो यह है कि ये दोनों कार्य उपयोग करने वाले मानव पर भी निर्भर है। विज्ञानजनित संस्कृति का भी यही हाल है। क्योंकि विज्ञान का अर्थ होता है विशिष्ट एवं विविध ज्ञान, किन्तु विपरीत ज्ञान भी विज्ञान का अर्थ होता है। जो आज के परिप्रेक्ष्य में मानव विज्ञान के विपरीत ज्ञान से ही स्वयं विनाशोन्मुख दिख रहा है, लेकिन इस विज्ञान के साथ आध्यात्मिक शक्ति से सम्बलीत होकर कार्य करे तो वह निश्चित मानव के लिए कल्याणकारी एवं सुखकारी सिद्ध हो सकेगा।

वायु तो जीवन का संरक्षक है। उसी को हम पीते हैं और उसी को दूषित करते हैं। जिसका भयंकर परिणाम आज उपस्थित हो गया है।

इसी प्रकार जल भी वायु की भाँति जीवन का अविभाज्य अंग है। वैदिक वाङ्मय में जल का महत्व लौकिक एवं पारलौकिक दोनों दृष्टि से वर्णित है। जल के लौकिक स्वरूप अर्थात् व्यावहारिक स्वरूप के अन्तर्गत खान–पान, इसके उपयोग, दुरूपयोग आदि पक्षों परविचार किया जाता है और पारलौकिक स्वरूप के अन्तर्गत जल का दैवी स्वरूप वर्णित है। जल विष्णु का निवास स्थल है। जल सृष्टि का मूलाधार है। वृक्ष, वनस्पतियाँ, पशु–पक्षी आदि सभी जीवधारियों का जीवन अमृत तुल्य जल पर ही अवलम्बित है, जल शाश्वत है। इसे अपवित्र नहीं करना चाहिए। प्रलय काल में जब कुछ भी शेष नहीं रह गया तब केवल जल ही संसार को आवृत्त किये हुए था। आकाश–पाताल का कुछ पता नहीं चलता केवल जल ही जल चारों तरफ विद्यमान था–

वेदों में जल के शुचिता एवं संरक्षण के सम्बन्ध में अनेक उल्लेखनीय सन्दर्भ प्राप्त होते हैं,

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नभः किमासिदगहनं गंभीरम्।।[12]

वेदों में जल के शुचिता एवं संरक्षण के सम्बन्ध में अनेक उल्लेखनीय सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, जिनको दृष्टिगत रखकर जल प्रदूषण को रोका नहीं जा सकता बल्कि जल को प्रदूषण मुक्त रखते हुए जल संरक्षण भली–भाँति किया जा सकता है। आज जल–प्रदूशण की विभिषिका से पूरा विश्व संकटग्रस्त हो गया है। जल संगठनों की चेतावनी है कि एशिया के कुछ समुद्र तट मल–मूत्र तथा सीवरों के गन्दे पानी के कारण इतने दूषित हो चुके हैं कि वे स्वास्थ्य के लिए खतरा उत्पन्न कर सकते हैं। यही स्थिति भारती नदियों की भी हो गयी है। इन जलों की अस्वाभाविक स्थिति के कारण जनसंख्या भी प्रभावित हो सकती है। इसी जनसंख्या को सकुशल रखने के लिए वैदिक–ऋषियों ने जल संरक्षण के प्रति विशेष आग्रह किये हैं। ऋषि का कथन है कि भली–भाँति निरोगी तथा रोग विनाशक इस जल को मैं लाता हूँ। स्वच्छ–जल पीने से मैं मृत्यु से बचा रहूँगा। अन्न, घृत, दुग्ध आदि सामग्री तथा अग्नि सहित घटों में सम्यक् रूप में बैठता हूँ–

इमा आपः च भराम्यक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः।
गृहानुप प्रसीदाम्यमृतेन सहाग्निनन।।[13]

आज के नदियों की दशा पर भी यही प्रयास होना चाहिए। सभी लोग नदियों के विषैलेपन के लिए उत्तरदायी है। अतः सबको मिलकर नदियों की रक्षा करनी चाहिए। उनके अविरल प्रवाह को बहने दें। उपरोक्त से प्रमाणित हो जाता है कि वैदिक ऋषियों को पर्यावरण के लिए जल के महत्व का ज्ञान था। इन्होंने जल के दोष निवारण के उपाय खोजने का प्रयास भी किया था और यथासम्भव उसकी शुद्धता पर भी प्रतिबद्धि थे। जल हमारे आस्था का विषय है। उसकी निर्दोषता का ध्यान सभी को देना चाहिए। धीरे–धीरे जल की शुद्धता नष्ट हो रही है, जो जीवन के लिए अभिशाप बन सकता है। सम्पूर्ण मानव समाज पर्यावरण के लिए समवेत रूप से जल के प्रवाह को सतत् निर्बाध गति से प्रवाहित होने तथा प्रदूषण मुक्त बनाये रखने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए।

इसी प्रकार जब हम भारभूता पृथ्वी की तरफ ध्यान आकृष्ट करते हैं, तब भयाक्रान्त हो जाते हैं। ''महाभारत में पृथ्वी की विधिवत स्तुति की गयी है। पृथ्वी की सुरक्षा एवं संरक्षण की बात तत्कालीन तथ्यों से परिलक्षित होती है। लाक्षागृह से जीवित बच जाने पर जब पाण्डवों को पुनः खाण्डवप्रस्थ प्राप्त हुआ तो उन्होंने सर्वप्रथम पृथ्वी पूजन की। पृथ्वी का अतिशय उपभोग, यदि मानव धर्म–मार्ग का अनुसरण नहीं करता तो निश्चित रूप से धर्मच्युत माना जायेगा। यह पृथ्वी–दान को सभी दानों में श्रेष्ठ कहा गया है।[14]

महाभारत के आदिपर्व में आया है कि वन में उत्पन्न हुए वृक्षों की भाँति परस्पर आश्रित रहकर लोक सुखी हो जाते हैं। इनको आश्रय देने वाले बलवान् वैभवशाली मित्र और एक–दूसरे के सम्वर्धक होते हैं–

बलवन्तः समृद्धार्थो मिवान्धवन्दना।
जीवन्ति परस्परमाश्रित्य द्रुमाः काननायिव।।[15]

सन्दर्भ

1. रा0गौ0, 101
2. अ0वे0, 17/1/77
3. तै0ब्रा0, 3/2/2/5, 2/2/5/10
4. यु0वे0,य 16/17
5. य0वे0, 16/34
6. य0वे0, 16/18
7. य0वे0, 36/17
8. य0वे0, 27/12
9. ऋ0वे0 10/37/12
10. ऋ0वे0 10/186/3
11. य0वे0, 27/23
12. ऋ0वे0, 10/12/1
13. अथर्ववेद, 3/12/9
14. महाभारत/आदिपर्व, 206/51
15. महाभारत, आदिपर्व, 138/27
16. रा0गौ0, 101